International Journal of Humanities and Arts 2024; 6(1): 111-113

International Journal of Humanities and Arts

ISSN Print: 2664-7699
ISSN Online: 2664-7702
Impact Factor: RJIF 8.00
IJHA 2024; 6(1): 111-113
www.humanitiesjournals.net
Received: 11-02-2024
Accepted: 16-03-2024

डॉ. अरविन्द कुमार सिंह
हिन्दी विभाग, सहकारी पी. जी. कॉलेज मिहरावाँ, जौनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

धर्मेन्द्र निषाद
हिन्दी विभाग, सहकारी पी. जी. कॉलेज मिहरावाँ, जौनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अरविन्द कुमार सिंह
हिन्दी विभाग, सहकारी पी. जी. कॉलेज मिहरावाँ, जौनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

जैनेन्द्र के उपन्यासों में अंतर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति

अरविन्द कुमार सिंह, धर्मेन्द्र निषाद

DOI: https://doi.org/10.33545/26647699.2024.v6.i1b.107

सारांश

जैनेन्द्र कुमार ने हिन्दी उपन्यास को एक नयी दिशा, एक नयी औपन्यासिक दृष्टि, नया कथ्य और मुहावरा दिया है। उस समय जब प्रेमचन्द के सामाजिक उपन्यासों का बोलबाला था, जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में व्यक्ति को केन्द्रीय विषय बनाया। व्यक्ति को उसकी सामान्यता के रूप में नहीं, बल्कि विशिष्टता के तौर पर ग्रहण किया, उनकी पहचान और पड़ताल का प्रयत्न किया है। जैनेन्द्र ने उपन्यास को वस्तु और शिल्प की नयी भूमि पर खड़ा करने का प्रयास किया। उसमें वैयक्तिक सत्यों के मनोवैज्ञानिक उद्घाटन और विश्लेषण की क्षमता और योग्यता पैदा की थी और उसे कथात्मक ढरो और रूढ़ियों से मुक्ति दिलाई। 'परख' से 'अनाम स्वामी' तक के उपन्यास उनकी औपन्यासिक प्रतिभा के प्रमाण हैं।

कूटशब्दः हिन्दी उपन्यास, नयी दिशा, औपन्यासिक दृष्टि, नया कथ्य

प्रस्तावना

जैनेन्द्र ने उपन्यास 'परख' की भूमिका में अपनी उपन्यास कला, उसके उद्देश्य और प्रयोजन के बारे में लिखा है– ''उपन्यास का काम है कुछ आगे की भविष्य की सम्भावनाओं की जरा झाँकी दिखाना और जो कुछ अब है, उसकी तह हमारे सामने खोलकर रख देना। उपन्यास एक नये सत्य में स्वप्न का पुट देकर, वास्तव में कल्पना मिलाकर, व्यवहार में आदर्श का साम्य और सामंजस्य स्थापित कर और वर्तमान पर भविष्य का रंग चढ़ाकर जीवन का वह रूप पेश करता है जो जीवन से मिलता–जुलता है, फिर भी अनोखा है, जिससे मनोरंजन भी प्राप्त होता है और शिक्षा भी और जिससे हठात् एक नयी चीज हृदय में बैठ जाती है और हम जरा आगे बढ़ जाते हैं।''[1]

जैनेन्द्रजी के समस्त उपन्यासों (दशार्क को छोड़कर) का अध्ययन कर उनकी मुख्य चिन्तनधारा का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

जैनेन्द्र के उपन्यास व्यक्ति की निगाह से विश्व को देखते हैं। विश्व उन्हें उतना ही दिखता है जितना उस निगाह से वे देख पाते हैं– ''इस विश्व के छोटे–से–छोटे खंड को लेकर हम अपना चित्र बना सकते है और उसमें सत्य के दर्शन पा सकते हैं जो ब्रह्मांड में है, वहीं पिंड में भी है। इसीलिए अपने चित्र के लिए बड़े केन्वास की जरूरत मुझे नहीं हुई। थोड़े में समग्रता क्यों न दिखायी जा सके?''[2] जैनेन्द्र सामाजिक यथार्थ की अपेक्षा व्यक्ति सत्य को तरजीह देते हैं, उसी के द्वारा समष्टि–सत्य को पाना चाहते हैं।

जैनेन्द्र जी के उपन्यास व्यक्ति प्रधान मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं, उनकी दृष्टि ने व्यक्ति की गूढ़ और जटिल मानसिक स्थितियो और अवस्थाओं को अभिव्यक्त किया है जो अनेक पर्तो में लिपटी रहती है और हमारे चरित्र और व्यवहार को नियंत्रित करती हैं। यह दृष्टि उन्हें मनोवैज्ञानिक दर्शन के क्षेत्र में ले जाती है जहाँ वह पात्रों की मनोभूमियों को उनके व्यवहारो और आचरणों को, मनोग्रन्थियो और मनोविचारों में से उभरते हुए दिखाती हैं। पात्रों की पीड़ा और तकलीफ के मूल उत्स को वह वैयक्तिक मनोवैज्ञानिक स्त्रोतों में ढूँढने का प्रयास करती है, सामाजिक आर्थिक स्त्रोतों में नहीं। जैनेन्द्र वैयक्तिक जीवन का चित्रण करते हुए 'बाहर से भीतर' की ओर आये हैं, सामाजिक समस्याओं के निरूपण के स्थान पर व्यक्तिगत उलझनों का विश्लेषण करने लगे हैं।''[3] उनके प्रमुख पात्र मध्यवर्ग के प्रतिनिधि हैं जो अपने सामाजिक जीवन सन्दर्भों से प्रायः विलग हैं।

जैनेन्द्र ने व्यक्तिवादी विचारणा को प्रतिपादित करते हुए व्यक्ति के व्यक्तित्व की अपेक्षा उसकी वैयक्तिकता को महत्व दिया है और मनोविश्लेषणात्मक के आधार पर स्त्री–पुरुष की सत्ता के स्तर पर नवीन विचारों का प्रतिपादन किया है। पति–पत्नी सम्बन्धों की तिर्यक रेखाओं के मध्य जीवन की सक्रियता का सूक्ष्मता से विश्लेषण करते हुए उन्होंने यौन सम्बन्धों की स्वतंत्रता, पति–पत्नी के व्यक्तित्व एवं तज्जन्य प्रेम में व्यापकता और पर–पुरुष अंगीकारिता तथा विवाह संस्था के शैथिल्य के माध्यम से नारी का चित्रण ही व्यापक रूप से किया है।

उनके उपन्यासों को नामकरण के आधार पर विभाजित किया जा सकता है।

‘परख‘ में कट्टो मुख्य पात्र है। सत्यधन के प्रति उसका प्रेम वैयक्तिक स्तर का प्लेटॉनिक भाव है। किन्तु यह दावे से घोषित नहीं किया जा सकता कि उसका उत्सर्गोन्मुख प्रेम–भाव उसकी दमित अथवा यौन वृत्ति की प्रतिक्रिया थी या सामाजिक परिस्थितियों से विवश होकर जीवन लक्ष्यों का उदात्तीकरण। को के व्यवहार को यदि मानसिक प्रतिक्रिया के साँचे में ढालकर देखें तो उसमें उदात्तीकरण भी देखा जा सकता है। वह सत्यधन को चाहती थी। अतः जब प्रेम में वह उसे सशरीर न पा सकी तो उसमें विवाह के प्रति ही तिरस्कारं भावना जगती है। बिहारी तो अनिश्चित स्थिति से निकल सकने का साधन ही बनाया गया है। उसका बिहारी से विवाह तत्पश्चात् उसका बालक–बालिकाओं को शिक्षा देने का कार्यक्रम उसके उदात्त जीवन मूल्यों को प्रकाशित करती है। उसके यौन जीवन की अभुक्त अवस्था हो उसे अपनी जीवनी शक्ति को आदर्श परियोजना में प्रवृत्त करने की प्रेरणा देती है।

‘सुनीता‘ में जैनेन्द्र ने स्पष्ट किया है कि मनुष्य जीवन चलाता है, कभी चलते– चलते रुकता और कभी–कभी पिछड़ जाने के भय से भागने लगता है। यही जीवन वृत्ति है और इसी पर आश्रित मनुष्य का अस्तित्व रुकने से दोलायित, भागने से अव्यवस्थित एवं चलने से शान्त हो पाएगा। संतुलित गति ही जीवन है ‘‘रुकना कभी श्रेयस्कर हुआ है? साँस रुकती है, उसे मौत कहते हैं। गति रुकती है, तब भी मौत है। हवा रुकती है, वह भी मौत है। रुकना सदा मौत है। जीवन नाम चलने का है।‘‘[4] कला में सौन्दर्य के अतिरिक्त अभिव्यक्ति का बल भी रहता है इसीलिए तो घोर व्यक्तिवादी हरिप्रसन्न अपनी कुण्ठाओं को ‘ओ तू‘ शीर्षक वाले चित्र के माध्यम से व्यक्त करता है। श्रीकान्त हरि द्वारा छोड़े हुए चित्र को देख कहता है– ‘‘.... इसमें बँधा है प्रतिक्षण, उसके प्रत्येक क्षण में स्पंदित होता रहने वाला वह प्रश्न– वह जिज्ञासा, वह आकांक्षा जो हरिप्रसन्न के जीवन का जीवन थी, जिसने उसे सदा यों भटकाए रखा।‘‘[5]

‘त्यागपत्र‘ की मृणाल सामाजिक विद्रोह की सजीव आकृति है। उसकी व्यक्ति चेतना इतनी प्रखर है कि एक ओर जहाँ वह सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध शंखनाद करती है। वहाँ दूसरी ओर नारी–सुलभ भावुकता के प्रवाह में भी बह जाया करती है। प्रमोद के समझाने पर कि वह घर चले, मृणाल कहती है– ‘‘तुम मुझको नहीं जानते हो, मैं पति के घर को छोड़कर आ गई हूँ, पति है पर दूसरे पुरुष के आसरे पर रह रही हूँ, उसके साथ रह रही हूँ। तुम न जानो, मैं यह जानती हूँ। तुम अपनी आँख ढक लो, किन्तु मुझसे अपना यह सारा पालक निगल जाने को नहीं कह सकते। फिर जिसको साथ लेकर पति को छोड़ आई हूँ, उनको मैं छोड़ दूँ ! उन्होंने मेरे लिए क्या नहीं त्यागा? पापिनी हो सकती हूँ पर उसके ऊपर क्या अकृतज्ञ भी बनूँ।‘‘[6] इसमें जैनेन्द्रजी ने व्यक्ति पात्र के समाज विरोधी नीति को एक रहस्यात्मक दार्शनिकता प्रदान की है।

‘कल्याणी‘ को कल्याणी भी व्यक्ति प्रधान पात्र है जिसके व्यक्तित्व में तह–पर–तह चढ़ी है उसकी आत्मा तक पहुँच पाना दुरूह है– ‘‘कल्याणी में यही अनबूझ है। चार में तीन हिस्से बात अनकही रखकर सिर्फ एक हिस्सा कहेंगी। उस पर समझेंगी कि समझने को काफी हो गया है।‘‘[7] बात को न कहने या अधूरी कहने की प्रवृत्ति वास्तव में जीवन के स्थायी असन्तोष की द्योतक है ‘‘अपने सम्बन्ध में उन्हें समाधान नहीं था। उनको ख्याल है कि उमर व्यर्थ बीतती जा रही है। रह–रहकर उन्हें अपने उन सपनों की याद होती थी जो कॉलेज में पढ़ने के वक्त उनके मन में झूमा करते थे।.... उनकी गिरिस्ती न होती तो वह डॉक्टरी से कमाई न करती।.... अगर उन्हें नया जन्म मिले तो वह अपने को इन्कार करके न चलें। फिर चाहे उसका कुछ भी परिणाम आगे हो। वह जीवन का आरम्भ जैसे नए सिरे से करना चाहती थी और प्रस्तुत जीवन को गलत शुरू हुआ समझकर मानो उसे यहीं खत्म हुआ देखना चाहती थी।‘‘[8] कल्याणी की प्रायः समस्त चित्त–विकृतियाँ उसमें व्यक्ति प्राधान्य के कारण ही है। कभी शिष्ट दिखती है तो कभी अत्यधिक अशिष्ट। यह सब उसकी विवशता ही है– उस समय उसके व्यक्ति का कौन सा पहलू सतेज रहा हो, यह तो वह स्वयं भी नहीं जानती थी।

‘सुखदा‘ में सुखदा यह महसूस करती है कि ‘‘स्त्री की कुछ सुविधाएँ हैं कुछ असुविधाएँ हैं। जहाँ तक नामवरी की बात है, स्त्री का मार्ग खुला है, सीधा है और बदनामी के लिए भी वह उतना ही सहज भाव से खुला हुआ है। सार्वजनिक जीवन में स्त्री जल्दी ही वह सकती है, क्योंकि वह अस्वीकृति कम पाती है। लोग उसे अधिक सम्भ्रम, अधिक आदर भाव से देख सकते हैं। पर यही सुविधाएँ आगे जाकर बाधाएँ हैं।‘‘[9] घर का द्वार खोल देने वाली सुखदा पार्टी के सदस्यों के व्यवहार से अपनी कमजोरी की जाँच करने लगती है। विषय–वासना उसे कुछ बन दिखाने, कर गुजरने और आत्मप्रदर्शन के मोह से झंकृत करती है। वह अपने को तोड़कर ऊपर आ जाना चाहती है।

‘विवर्त‘ में जैनेन्द्र जी ने व्यक्तिवाद के द्वारा उसके अस्तित्व का प्रश्न किया है। दुनिया एक घेरा है, उस घेरे में अनेक छोटे घेरे हैं जो कि परस्पर क्रमचयित होते रहते हैं। इसी से मानवीय चेतना की अनेक चढ़ती उतरती पर्ने सार्थकता की पहेली बुनती सी रह जाती हैं। मिथ्या तत्व में हमारा चेतन अस्तित्व है, जिसमें होना न होने का समंजन।[10] भुवन मोहिनी का सोचना है कि ‘‘क्या है जो नहीं है। विघ्न नहीं है, अभाव नहीं है। चुनौती नहीं है। लेकिन यह तो नकार है। इनका न होना ही सच्चा होना है।‘‘[11] व्यक्ति चेतना का आधार है, हम सोच सकते हैं इसलिए हमारा अस्तित्व है और अस्तित्व अनास्था की स्थिति में द्वन्द्व उत्पन्न करता है।

‘व्यतीत‘ में जयन्त युद्ध क्षेत्र में मानवीय प्रगति का विश्लेषण करते हुए कहता है– ‘‘दुश्मन सामने है, उसका डर सामने है।.... दुश्मन को पैदा करके उसकी दुश्मनी के जोर से माना हम सारे भाग्य को और भगवान को मुट्ठी में कर लेते हैं, मानो मानव–जीवन का अर्थ और नियति का निर्देश पा जाते हैं, तुच्छ ही से हम विराट होते और संशय से संकल्प में उठ आते हैं।‘‘[12] व्यक्ति जीवन को सुख से जीना चाहता है उसे शांति की अपेक्षा है किन्तु आधुनिक विचारक उसी की सुरक्षा के लिए युद्धार्थ नित्य शक्ति अर्जित करते रहना अनिवार्य मानता है।

जयवर्धन का जीवन–दर्शन व्यक्ति–निष्ठ है। विश्वास–विलगता, विशक्ति विरह, व्याप्ति आदि शब्दों से जय की दृष्टि को व्यक्त किया जा सकता है। वह विल्बर से कहता है– ‘‘ब्रह्माण्ड ज्यामिति का वृत नहीं है। यहाँ जीव सब केन्द्र में हैं, और हर जीव प्रति–क्षण मर जी रहा है, किन्तु हर एक केन्द्र अपने ही वृत का है। इसलिए हर मरने और हर जीने में से सत्य स्खलित तनिक भी नहीं होता, यह तो इस तरह उत्तरोत्तर प्रकाशित और सिद्ध ही होता जाता है.... कौन जाने कि इस समय यही आवश्यक और उपयोगी हो कि स्थिति शून्य बन आए, आवर्त घुमड़े और शक्तियों के नये संतुलन का उसमें से उदय हो।‘‘[13] इला की मान्यता है कि ‘‘स्त्री इसलिए नहीं है कि पुरुष को अपनी ओर ले। उसकी कृतार्थता इसमें है कि वह पुरुष को आगे और उत्तरोत्तर करे।‘‘[14] इसीलिए तो इला अविवाहित रहते हुए जयवर्धन के साथ ही रहते हुए उसके प्रति पूर्ण समर्पित होती है, यही उसकी व्यक्ति चेतना है जो समाज के विरुद्ध है।

‘मुक्तिबोध‘ में सहाय के माध्यम से व्यक्तिवादी चिन्तन दृष्टव्य है लेकिन ठाकुर महादेव सिंह उसे उद्बोधित करते हैं ‘‘आदमी खुद होने और बनने के लिए होता है, बनाया जाना किसी को पसन्द नहीं होता।‘‘[15]

‘अनन्तर‘ के प्रसाद इसी व्यक्तिवादी चेतना के प्रवाह में यह कहते हैं कि– ‘‘मारने के बजाय अब मरने का हुनर सीखना और सिखाना है। मारने के लिए आवेश चाहिए, समाधान पूर्वक मरने में

उतनी ही आस्था और निरस्वता की आवश्यकता है। असल में निज के जीवन पर ही जिससे जोखिम नहीं आता वह असली प्रेम नहीं है।''[16] अपराजिता इसीलिए चारु का प्रेम बचाने के लिए खुद की बलि चढ़ा देती है और आदित्य के हर अत्याचार को सहती है, वह चारु से कहती है– ''प्यार में तुम पहल लो, अपने प्यार में तुम बेहया और बेरहम बनो।''[17]

जैनेन्द्रजी ने 'अनाम स्वामी' में अनाम के व्यक्तित्व में वैयक्तिक पुरुषार्थ को महत्व देते हुए यह बताया है कि टालने से स्थिति टलती नहीं, पुरुषार्थ से उसे ओढ़ना ही मनुष्यता की मांग है। अनाम व्यक्ति को समाज के पहले रखता है– ''जीवन के सन्दर्भ से उन्हें अलग नहीं होने देना है। इन्द्रियाँ मर नहीं सकती। जिया उन्हीं से जाता है। क्या मतलब उन्हें फिर जीतने का?''[18]

निष्कर्ष

जैनेन्द्र का सम्पूर्ण साहित्य व्यक्ति की व्यथा से आपूर्ण है। व्यक्ति की आत्मा में झांककर उसके आत्मस्थ सत्यों का उद्घाटन तथा अन्तः बहिर्द्वन्द्व से उत्पन्न विषम परिस्थितियों को चित्रित करना ही उन्हें श्रेयकर रहा है। जैनेन्द्र की दृष्टि में व्यक्ति ही वह आधार बिन्दु है, जिस पर समस्त जीवन की भीति आरूढ़ है। जो समष्टि में है, वही व्यष्टि में है। अतएव जैनेन्द्र के उपन्यास में व्यतीत के समग्र रूप की अभिव्यंजना की है।

संदर्भ सूची

1. 'परख' (दो शब्द) –जैनेन्द्र, पृ० 3.।
2. 'सुनीता' – जैनेन्द्र (प्रस्तावना), पृ० 2
3. 'हिन्दी उपन्यास' डॉ. सुष्मा धवन, पृ० 169
4. 'सुनीता' – जैनेन्द्र, पृ० 167
5. वही, पृ० 243
6. 'त्यागपत्र' – जैनेन्द्र, पृ० 59,59
7. 'कल्याणी' – जैनेन्द्र, पृ० 140
8. वही, पृ० 20
9. 'सुखदा' – जैनेन्द्र, पृ० 129
10. 'विवर्त' – जैनेन्द्र, पृ० 106,107
11. वही, पृ० 40
12. 'व्यतीत' – जैनेन्द्र, पृ० 98,99
13. 'जयवर्धन' – जैनेन्द्र, पृ० 372,73
14. वही, पृ० 417
15. 'मुक्तिबोध' – जैनेन्द्र, पृ० 36
16. 'अनन्तर' – जैनेन्द्र, पृ० 45
17. वहीं, पृ० 161
18. 'अनाम स्वामी' – जैनेन्द्र, पृ० 223